भारतीय ज्ञान परम्परा में स्तूप निमार्ण की परम्परा शैक्षणिक परामर्शदाता

डॉ. अंश कुमार

इतिहास विभाग ,स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज , इग्नू अध्ययन केंद्र दिल्ली

शोध सार: भारतीय ज्ञान परंपरा में स्तूप

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध परम्पराओं में से एक है जिसमें आध्यात्मिकता दर्शन और जीवन मूल्यों का गहन समन्वय देखने को मिलता है इसके अन्तर्गत वेद, उपनिषद, दर्शन विभिन्न धार्मिक एवं दार्शनिक विचार शामिल है। भारतीय धार्मिक परंपरा की जड़े बहुत ही गहरी हैं जो भारत के सभी धर्मों को अपने में समाहित कर लेती है। इसी परम्परा में भारतीय बौद्ध धर्म का उदय हुआ जिसने मानव जीवन दुःख और मोक्ष के बारे में गहन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

भारतीय वास्तुकला के इतिहास में स्तूप प्राचीन माने जाते हैं। स्तूप निर्माण की परम्परा अभी धुंध में लिपटी हुई प्रतीत होती है। स्तूप निर्माण की परम्परा का क्या इतिहास है, यह जानना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि स्तूप एक धार्मिक प्रतीक है तथा इसके निर्माण की शुरुआत कहाँ से हुई व समाज में इसकी शुरुआती मान्यतायें क्या थी? और इनका सांस्कृतिक महत्व क्या है? बौद्ध धर्म मानने वालों के लिए स्तूप का क्या महत्व है? आदि प्रश्नों का उत्तर ढूंढना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

शब्द संकेत:- वैदिक, ऋग्वेद, रामायण, नाशवान शरीर, स्तूप, चैत्य, भस्म, स्मारक, धूआ,領 हिरण्य, भूमिग्रह, आश्वलायन गृह सूत्र, अस्थि अवशेष, वास्तुकला, स्थापत्य कला, गर्भ आदि।

प्रस्तावना

भारतीय धार्मिक ज्ञान परम्परा की जड़े बहुत ही गहरी रही हैं। जो भारत के सभी धर्मों को आपस में समाहित कर लेती है इसी कारणवश चाहे दर्शन हो या वास्तुकला इनका एक दूसरे पर प्रभाव आना स्वाभाविक है। इसी कड़ी में अगर हम बात करें तो स्तूप निर्माण की परम्परा भारत में क्या रही है तो सर्वप्रथम इसका साहित्यिक उल्लेख हमें वैदिक ग्रंथों में देखने को मिलता है। सौभाग्यवश हमें कुछ बौद्ध ग्रंथों में भी स्तूप निर्माण का वर्णन मिलता है।

स्तूप का अर्थ

भारतीय ज्ञान परम्परा के वास्तुकला के इतिहास में स्तूप निर्माण का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्तूप मूलतः बौद्ध धर्म से संबंधित धार्मिक संरचना है जो बुद्ध के पवित्र अवशेषों आदि के संरक्षण के लिए की जाती थी। स्तूप केवल धार्मिक केन्द्र नहीं बल्कि समय के साथ कला स्थापत्य सांस्कृतिक प्रतीक भी है।

स्तूप संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका तात्पर्य ढेर के रूप में लगाया जाता है। वही प्राकृत भाषा में इसे 'थूप' कहा जाता है,1 तथा वर्मी भाषा में इसे 'पैगोड़ा' और सिंघली भाषा में इसे 'ढगोवा' कहा जाता है। वही पाली भाषा में इसे 'थूप' कहा जाता है।

साधारण भाषा या धारणा में स्तूप को केवल एक गोलाकार स्मारक माना जाता है परन्तु इसका सामान्य अर्थ है एकत्रित करना या ढेर लगाना जो मिट्टी के टीले या थूहो के रूप में अर्ध गोलाकार या औंधे (उल्टे) कटोरे की तरह दिखाई देता है। जिसके अंदर पूजनीय व्यक्ति के नाशवान शरीर के भस्म अवशेष को रखकर एक मिट्टी के ऊंचे टीले को स्तूप का रूप दिया जा सकता है। अमरकोष में 'राशिकृत भृत्तिकादि' उसी कथन की पुष्टि करता है।2

स्तूप का सम्बंध साधारण तौर पर बौद्ध धर्म से लिया जा सकता है, बौद्ध साहित्यों में भी इसका वर्णन मिलता है। अंगुत्तर निकाय 1/127, 3 दीघ निकाय 2/142, 4 मज्झिम निकाय 2/244 में 'थूप' शब्द का वर्णन बार-बार किया गया है।5 यदि हम जातकों को ध्यानपूर्वक पढ़ें तो उसमें भी 'थूप' शब्द का वर्णन मिलता है– "कसपस्य भगवतो द्वादरस योजनिकान कानक थूपिका"।6 वही यदि हम प्राचीन भारतीय शिक्षा नगरी तक्षशिला के उत्खनन में प्राप्त एक अभिलेख में स्तूप (थूप) के स्थापना का विवरण देखें तो कुछ इस प्रकार मिलता है– 'मंरिखेन सम्यकेन थूपो प्रतिस्तवितोस'।7 अगर हम सूक्ष्मता से अध्ययन करें तो बौद्ध जातकों में भी 'थूप' शब्द का उल्लेख मिलता है, जिसका संबंध किसी ऊँचे टीले या स्मारक से समझा जा सकता है जिसकी पुष्टि भारत के विभिन्न पुरातात्विक स्थलों से होती है।

स्तूप शब्द के लिए 'चैत्य' शब्द का उल्लेख मिलता है, जो 'चि' चयन धातु से निकला है। स्तूप मिट्टी की एक बड़ी संरचना है जो थूहे का ढेर लगाकर बनाया जाता है जिसमें पत्थरों या ईंटों का भी प्रयोग किया जाता है, यह प्रथा बुद्ध काल से पहले भी प्रचलित थी। स्वयं बुद्ध ने 'महापरिनिब्बान सुत्त' में वर्णन किया है कि उनके अस्थि अवशेषों को चतुष्पथ (चौराहे) पर उसी प्रकार समाधिस्थ किए जाए जिस प्रकार चक्रवर्ती सम्राटों के अस्थि अवशेष दफनाने के लिए किए जाते हैं। इससे यह पता चलता है कि बुद्ध के

'महापरिनिब्बान' से पहले स्तूप निर्माण की परम्परा समाज में प्रचलित थी। शासकों और महत्वपूर्ण व्यक्तियों के शारीरिक अवशेषों पर स्मारक बनाने की प्रथा थी, जो बुद्ध से पहले चली आ रही थी।

वैदिक एवं बौद्ध धर्म में स्तूप निर्माण की परम्परा

स्तूप निर्माण की परम्परा का इतिहास बौद्ध धर्म के इतिहास से प्राचीन जान पड़ता है। यद्यपि यह कह पाना कठिन है कि स्तूप निर्माण की परम्परा कब आरम्भ हुई लेकिन वैदिक साहित्यों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि स्तूप निर्माण की परम्परा वैदिक काल में भी रही हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि अब तक वैदिक कालीन स्तूप के अवशेष प्राप्त नहीं हुए हैं।

ऋग्वेद के दसवें मंडल में उल्लेख मिलता है कि एक व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके नाशवान शरीर के अवशेष को मातृ देवों के संरक्षण में दे देने से वे उसकी रक्षा करती हैं।8 वैदिक काल में पृथ्वी को मातृ देवो के नाम से संबोधित किया जाता था। मृत व्यक्ति के परिजनों अस्थि अवशेषों को एक पात्र में एकत्र कर भूमि में गड़ढा करके उसके अन्दर रख दिया करते थे तथा उसके ऊपर मिट्टी, पत्थर, कंकड़ आदि के द्वारा ढक दिया करते थे और उसके ऊपर एक गोलाकार संरचना बना दी जाती थी जिसे बाद में स्तूप कहा जाने लगा।

इससे यह पता चलता है कि वैदिक काल में यह प्रथा मूलतः सामाजिक प्रथा थी क्योंकि इसके संरक्षण के बारे में वर्णन नहीं मिलता। वही रामायण काल में भी स्तूप या चैत्य से संबंधित शब्दों का उल्लेख मिलता है। रामायण में शमशान भूभाग की तुलना चैत्य से की गई है। चैत्य शब्द का अर्थ चित्त या चिता से लगाया जाता है। उस समय दिवंगत या नाशवान शरीर के भस्म स्थल या अवशेषों पर चैत्य या स्मारक बनाने की परम्परा थी। भस्म या चित्त के स्थान पर पीपल का वृक्ष अथवा मिट्टी का थूहा बना कर उसके चारो तरफ बांस के खम्भों से घेरने के उदाहरण हमें बिहार के लौरिया नंदगढ़ नामक स्थान से मिलते हैं, जिसका संबंध वैदिक कालीन स्तूपों से होता है।

स्तूप का उल्लेख हमें ऋग्वेद में भी मिलता है। ऋग्वेद में वर्णन आया है कि अग्नि की उठती ज्वाला को स्तूप कहा जाता है।9 ऋग्वेद में अंगीरस के पुत्र का नाम 'हिरण्यस्तूप' के नाम से पाया जाता है। हिरण्य स्तूप का तात्पर्य सोने का ढेर अथवा थूहा है। वैदिक मान्यता के अनुसार सूर्य हिरण्य स्तूप है। सूर्य की सुनहरी किरणें स्तूप के आकार में चारों ओर फैल जाती हैं।10

"हिरण्य स्तूप सवितर्यथा व्यागिरसों जुहे, वाजे अस्मिता एवा त्वार्यत्रवसे वन्दमान सोमस्यु वाशु प्रति जागराहम्।"

आश्वलायन गृह सूत्र में अस्थि या राख को रखकर पृथ्वी में गाड़ देने और उस पर ऊँचा टीला बनाने का विवरण मिलता है।11 वैदिक ग्रन्थों में 'अनग्निदग्धा' शब्द का उल्लेख मिलता है जिसे वैदिक सभ्यता के लोग स्मारक के लिए प्रयोग करते थे।12 इससे यह पता चलता है कि उस काल के लोग नाशवान शरीर को धार्मिक रीति रिवाजों से वस्त्र सहित भूमि के गर्भ में रख देते थे। सम्भवतः 'भूमिग्रह' शब्द शव को भूमि में रखने का द्योतक है।13 शव के साथ अनेक वस्तुयें रखी जाती थीं जो एक सामाजिक प्रथा जान पड़ती हैं। उनके परिवार जनों की मान्यता थी कि परलोक में भी इन वस्तुओं का इस्तेमाल दिवंगत व्यक्ति करता होगा। एक जगह मृत व्यक्ति के हाथों में धनुष रखने का वर्णन प्राप्त होता है।14 आश्वलायन गृहसूत्र में अस्थिकुम्भ में शव की जली अस्थि या राख को रखकर पृथ्वी में गाड़ देने और उस पर ऊँचा टीला बनाने का विवरण मिलता है।15

भारत के विभिन्न भागों में अब तक हुए उत्खनन में जो भी स्तूप प्राप्त हुए हैं, वह ज्यादातर बौद्ध धर्म तथा कुछ एक जैन धर्म से संबंधित हैं। अभी तक प्रामाणिक वैदिक कालीन स्तूप प्राप्त नहीं हुए हैं। कुछ एक स्तूपों का संबंध वैदिककालीन प्रतीत होता है, लेकिन पुरातात्विक साक्ष्यों के अभाव में प्रमाणित नहीं हो सकता। बिहार के कुछ पुरातात्विक स्थलों जैसे लौरिया नंदगढ़ स्तूप के गर्भ से अस्थि अवशेष के साथ एक 'नग्न स्त्री' की आकृति अंकित शिल्प प्राप्त हुआ है, जिससे यह संभावना व्यक्त की जाती है कि यह आकृति पृथ्वी या मातृदेवी का अंकन है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह स्तूप वैदिक काल का रहा होगा। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वैदिक कालीन स्तूप वर्तमान समय में विद्यमान होंगे, भविष्य में प्राप्त होने की अपार संभावना हैं।

प्रसिद्ध विद्वान डॉ. काणे का मानना है कि मृत व्यक्ति के शरीर का अंतिम संस्कार चार चरणों में पूरा किया जाता है:

प्रथम - नाशवान शरीर को जलाना
द्वितीय - राख का संग्रह
तृतीय - अस्थि मंजूषा में शव की जली अस्थि या राख को रखना
चतुर्थ - स्मारक बनाना

स्तूप को अस्थायी रूप से बनवाया जाना यह प्रमाणित करता है कि वैदिककाल में थूप का निर्माण करना धार्मिक कर्मकाण्ड का अंग था, जिसका वैदिक साहित्य में प्रमाण मिलता है। इस प्रकार स्तूप या थूप बनाने का कार्य वैदिक सिद्धांत का बौद्ध काल में विकास हुआ है।16

शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल से ही मृत व्यक्ति के अस्थि अवशेषों के ऊपर मिट्टी का थूहा बनाने का प्रचलन था। यह संभव है कि भविष्य में वैदिक कालीन स्तूपों की प्राप्ति हो।

बौद्ध धर्म अनुयायियों के लिए स्तूप पूजनीय है। बौद्ध धर्म में स्तूप की परिकल्पना ब्रह्मांड की धुरी "एक्सिस मुंडी" (Axis Mundi) के रूप में की जाती है।17 इसके अलावा यह बुद्ध के महापरिनिर्वाण का प्रतीक है। बौद्ध ग्रंथ महापरिनिब्बान सुत्त में वर्णन मिलता है कि आनंद ने तथागत बुद्ध से पूछा कि उनके शारीरिक अवशेषों को सुरक्षित रखने के लिए किस प्रकार का स्तूप बनवाया जाए। तथागत बुद्ध ने उत्तर दिया कि उनके लिए बनवाया जाने वाला स्तूप चक्रवर्ती सम्राटों या राजाओं के लिए बनवाए जाने वाले स्तूप के समान होना चाहिए। बौद्ध ग्रंथों में ऐसे वर्णन मिलते हैं कि चक्रवर्ती सम्राटों के लिए बड़े आकार व विशिष्ट अलंकरण वाले स्तूप बनाये जाते थे जो संभवतः सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के सूचक हैं।

एक अन्य उदाहरण से स्तूप का वर्णन मिलता है। भगवान बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के बाद सातवाँ और अंतिम सप्ताह बोधगया के 'रजत' वृक्ष के नीचे बिताया। तपस्सु और भल्लिक नामक दो व्यापारी निकट मार्ग से व्यापार करने उड़ीसा पहुँचे। तथागत को बुद्धत्व प्राप्त हुए अभी केवल सात सप्ताह ही बीते थे। उसी समय ये दोनों व्यापारी उड़ीसा से लौटते समय राजगृह होकर उरुवेला (गया) से गुजर रहे थे। दोनों की भेंट वहाँ भगवान बुद्ध से हुई और इन्होंने तथागत को खाने के लिए 'मधुपिण्ड' का भोजन दिया जिसे बुद्ध ने स्वीकार किया। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद उनका यह पहला आहार था। दोनों ने बुद्ध की शरण ग्रहण की और वे उनके पहले गृहस्थ श्रावक (उपासक) बने।

बुद्ध उपदेश देने के बाद अपने केश और नाखून उन्हें दिए। व्यापारियों ने इन पवित्र अंशों को सुरक्षित रखने के लिए तथागत बुद्ध से तरीका पूछा, तब बुद्ध ने अपने वस्त्र या संघाटी को मोड़कर एक चौकोर वस्त्र के समान पृथ्वी पर रख दिया। उसके ऊपर इसी प्रकार क्रमशः उत्तरासंग और संकक्षिका को रखा और उसके ऊपर उलटा अपना भिक्षा पात्र रखकर अपनी छड़ी खड़ी कर दी। इस तरह बुद्ध ने स्तूप निर्माण का स्वरूप निर्धारित किया। दोनों व्यापारियों ने अपने देश पहुँचकर नख और बाल के ऊपर प्रथम बौद्ध स्तूप का निर्माण करवाया।

ऊपर वर्णन किया गया है कि वैदिककाल में स्तूप या थूहों के निर्माण की परम्परा की शुरूआत हो चुकी थी। उन्हीं का अनुसरण करके बौद्ध अनुयायियों ने स्तूपों का निर्माण निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया है।

स्तूप के प्रकार

बौद्ध धर्म में स्तूप चार प्रकार के बताये जाते हैं, जिनमें प्रथम तीन स्तूप प्रमुख हैं:

शारीरिक स्तूप (धातु स्तूप):- वे स्तूप जिनमें तथागत गौतम बुद्ध व अन्य प्रमुख अर्हतों (शिष्यों) के अस्थि अवशेषों, भस्म, केश, नख, दाँत आदि को संग्रहित कर बनाये गए हैं, शारीरिक या धातु स्तूप कहलाते हैं। दिव्यावदान से पता चलता है कि बुद्धकाल में केश, नख पर स्तूप बनाने का प्रचलन प्रारंभ हो गया था। बिम्बिसार के द्वारा अन्तःपुर में पूजा के लिए केश-नख के ऊपर स्तूप स्थापित करने का उल्लेख मिलता है।

उद्देशिक स्तूप:- ये तथागत बुद्ध या पूर्वकालीन बुद्धों की स्मृति में बनाए जाते थे। साथ ही बुद्ध के जीवन से संबंधित अष्टस्थानों (आठ प्रमुख स्थानों) पर बने स्तूप भी इसी कोटि में आते हैं। किसी विशेष घटनाओं को लेकर जो स्तूप बनाये जाते हैं, उन्हें उद्देशिक स्तूप कहते हैं। सांची में निर्मित सारीपुत्र का स्तूप उनमें से एक है।

पारिभौगिक स्तूप:- इसमें तथागत बुद्ध द्वारा प्रयोग की गई सामग्रियों जैसे भिक्षा पात्र, पादुका, छड़ी, चीवर या वस्त्र आदि वस्तुओं को रखकर जिन स्तूपों का निर्माण होता है, वे पारिभौगिक स्तूप कहलाते हैं। चीनी बौद्ध यात्री फाहियान तथा ह्वेनसांग ने इस तरह के स्तूपों का वर्णन अपने यात्रा वृत्तांत में किया है। सिंघली (श्रीलंकाई) बौद्ध ग्रंथ दीपवंश में भी पारिभोगिक स्मृति चिह्नों का उल्लेख मिलता है। अमरावती स्तूप के अलंकरण के माध्यम से भिक्षा पात्र व पारिभोगिक स्तूप दर्शाया गया है।

संकल्पित स्तूप (मनौती स्तूप):- श्रद्धालुओं के द्वारा मांगी गई मन्नत पूर्ण होने पर संकल्पित स्तूप का निर्माण होता है। ऐसे स्तूप श्रद्धालुओं की इच्छा पूर्ण होने पर बड़े स्तूपों के निकट छोटे-छोटे स्तूपों के रूप में मिट्टी, प्रस्तर (पत्थर) तथा ईंटों से बनाये जाते हैं। सारनाथ, तक्षशिला, संघोल और बोधगया आदि प्रमुख स्तूपों के निकट बहुत से छोटे स्तूपों का निर्माण हुआ है।

बौद्ध मान्यता के अनुसार सम्राट अशोक ने अपने शासनकाल में 84,000 स्तूपों का निर्माण करवाया था, जिसका वर्णन बौद्ध ग्रंथ दिव्यावदान में मिलता है। इसकी पुष्टि हमें भारत आए चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग के विवरणों में भी मिलती है; उसने भी अपने विवरणों में अशोक द्वारा निर्मित 84,000 स्तूपों का वर्णन किया है। वहीं यदि हम बौद्ध विद्वान बुद्धघोष द्वारा रचित कृति 'सुमंगलविलासिनी' के अनुसार देखें तो अशोक ने 84 हजार बौद्ध विहारों का निर्माण कराया था।

भारत में हुए विभिन्न स्थलों के पुरातात्विक उत्खनन में जो साक्ष्य प्राप्त हुए हैं, उनमें ज्यादा संख्या स्तूपों की है जिनका निर्माण ईंटों से हुआ है। सांची, भरहुत, बोधगया, सारनाथ तथा संघोल के बौद्ध स्तूप अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

स्तूपों की अवस्थिति एवं मुख्य भाग

इनका निर्माण बुद्ध से जुड़े स्थलों एवं प्रसिद्ध व्यापारिक मार्गों के निकट हुआ है, जिससे यह धार्मिक एवं व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। विश्व की समस्त वास्तुकलाओं के इतिहास में स्तूप सर्वाधिक महत्व रखते हैं क्योंकि इनका धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक आधार है।

सर्वप्रथम स्तूप का निर्माण भगवान बुद्ध के "महापरिनिर्वाण" के बाद उनके अनुयायियों में उनके धातु भस्म को लेकर हुए झगड़े के बाद हुआ। तब द्रोण नामक ब्राह्मण ने इस विवाद को खत्म करने के लिए बुद्ध के शरीर अवशेष को आठ भागों में विभक्त कर उनके अनुयायियों को दे दिया। उन्होंने अपने-अपने राज्य में ले जाकर एक-एक स्तूप का निर्माण करवाया:

- मगधनरेश अजातशत्रु ने राजगृह में स्तूप का निर्माण करवाया।
- लिच्छवियों ने वैशाली में स्तूप का निर्माण करवाया।
- शाक्यों ने कपिलवस्तु में स्तूप का निर्माण करवाया।
- बुलियों ने अल्लकप्प में स्तूप का निर्माण करवाया।
- कोलियों ने रामग्राम में स्तूप का निर्माण करवाया।
- मल्लों ने कुशीनगर में स्तूप का निर्माण करवाया।
- मौर्यों ने पिप्पलीवन में स्तूप का निर्माण करवाया।
- ब्राह्मणों ने वेठदीप में स्तूप का निर्माण करवाया।

स्तूप के प्रमुख भाग और अंकन

- ❖ वेदिका:- स्तूप को चारों ओर जिस जंगले अथवा रेलिंग से घेर दिया जाता था, उसे वेदिका कहते हैं।
- ❖ तोरण:- स्तूप तक जाने के लिए वेदिका में चारों दिशाओं में एक-एक प्रवेशद्वार होता था, जिस पर मेहराबदार तोरण खड़े किए जाते थे। प्रत्येक तोरण में दो स्तंभ तथा बडेरियां होती थीं। इन तोरणों पर भी बौद्ध धर्म-संबंधी कथानकों अथवा दृश्यों का अंकन है।

प्रदक्षिणापथ:- तोरणद्वार से प्रवेश करने पर स्तूप और वेदिका के बीच जो स्थान परिक्रमा के लिए रहता था, उसे प्रदक्षिणापथ कहते थे।

- ❖ मेधि:- मेधि उस गोल चबूतरे को कहते थे जिसके ऊपर स्तूप का मुख्य अंग रहता था।

- ❖ अंड:- पानी के बुलबुले के आकार अथवा औंधे (उल्टे) कटोरेनुमा स्तूप का यह ठोस भाग 'अंड' कहलाता था। यही स्तूप का मुख्य भाग होता था।
- ❖ हर्मिका:- अंड के ऊपरी भाग में प्रायः अस्थि पेटिका गाड़कर रखी जाती थी। उसके चारों ओर प्रायः चौकोर वेदिका से जो ऊपरी भाग घेर दिया जाता था, उसे हर्मिका कहते थे।
- ❖ छत्र:- अस्थि पेटिका के ऊपर एक पत्थर की यष्टि (डंडा) खड़ी की जाती थी और उसके शीर्ष पर एक अथवा तीन गोल छत्र रखे जाते थे। प्रायः तिहरा छत्र होता था, जिससे बुद्ध का तीनों लोकों का अधिपति होना सिद्ध होता है।
- ❖ सोपान:- मेधि प्रायः ऊंची हुआ करती थी, इसलिए मेधि पर चढ़ने-उतरने के लिए जो सीढ़ी/जीना बनाया जाता था, उसे सोपान कहते थे।

भारतीय ज्ञान परंपरा और स्तूप

यह सत्य है कि प्रायः स्तूप को केवल एक बौद्ध वास्तुकला समझा जाता है, लेकिन वैदिक ग्रंथों और बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन से यह पता चलता है कि स्तूप निर्माण की जड़ें वैदिक काल तक जाती हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में स्तूप निर्माण को केवल भौतिक निर्माण नहीं माना गया। इसके अंतर्गत मुख्य तीन स्तर देखे जा सकते हैं:

i. आध्यात्मिक स्तर:- जो ध्यान और मोक्ष के मार्ग का प्रतिनिधित्व करता है।
ii. दार्शनिक स्तर:- बौद्ध सिद्धांतों जैसे अनित्य, अनात्म और चक्र का प्रतीक।
iii. सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर:- समाज और धर्म का समन्वय।

वासुदेव शरण अग्रवाल का विचार है कि स्तूप त्रिलोक का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके विचारों के अनुसार प्रदक्षिणापथ और हर्मिका की वेदिकाओं से इसे पृथ्वी लोक, अंतरिक्ष लोक और आकाश लोक समझा जाता है। साधारण शब्दों में इसे इस तरह समझा जा सकता है:

- आधार – पृथ्वी तत्व
- गोल गुंबद – जल तत्व
- शिखर – अग्नि तत्व
- छत्र – वायु तत्व
- शीर्ष बिंदु – आकाश तत्व

वे स्तूप वास्तुकला को वैदिक यूप-वास्तु स्वीकार करते हैं तथा स्तूप की मेधि, अंड, हर्मिका और छत्र को वैदिक यूप के उन चार भागों से जोड़ने का प्रयास किया है जो

क्रमशः पितृलोक, मनुष्यलोक, देवलोक और साध्यदेवों के प्रतीक हैं। उपरोक्त वर्णनों से यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा और बौद्ध धर्म दोनों ने ही मानव जीवन को समझने में और उसे बेहतर बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

निष्कर्ष

उपरोक्त की गई चर्चा के अनुसार स्तूप निर्माण की परंपरा भारतीय वास्तुकला की महत्वपूर्ण देन है, जो अपने अंदर कई सौ सालों का इतिहास संजोए हुए है। स्तूप निर्माण की परंपरा कई काल खंडों में विकसित हुई है। उपरोक्त वर्णनों से यह प्रतीक होता है कि वैदिक काल में स्तूप निर्माण की प्रथा मूलतः एक सामाजिक प्रथा थी। इसका प्रमाण यह है कि बौद्धकाल से पहले राजाओं, महाराजाओं या कबीले के मुखिया आदि के अस्थि अवशेषों पर स्तूप निर्माण की परंपरा थी।

बौद्ध अनुयायियों के लिए स्तूप परम पूजनीय है; स्वयं भगवान बुद्ध ने स्तूप के रख-रखाव व निर्माण की उचित देखभाल करने का उपदेश दिया है। स्तूप निर्माण की परंपरा सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति की सूचक है, जैसे कि बुद्ध ने महापरिनिर्वाण सूत्र में कहा है कि जिस तरह राजा-महाराजाओं के अवशेषों पर स्तूप बनाने की प्रथा थी, उनके अवशेषों पर भी चौराहे पर स्तूप बनवाए जाएं। इससे यह प्रतीत होता है कि वैदिक परंपरा को बौद्धों ने अपना लिया और बौद्ध अनुयायियों के लिए स्तूप का धार्मिक महत्व स्थापित हुआ। बुद्धकाल से पहले यह परंपरा संभवतः आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थी, जो बुद्ध के काल में आकर धार्मिक रूप ले लेती है।

निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि स्तूप निर्माण की परंपरा वैदिक काल से बौद्ध काल तक आते-आते अनेक परिवर्तनों के साथ आज भी विद्यमान है। भारतीय वास्तुकला में स्तूप निर्माण की परंपरा धर्म, कला और संस्कृति का मिश्रण है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा में स्तूप को केवल एक धार्मिक भौतिक गतिविधि ही नहीं बल्कि इसे दर्शन और अनुभव का समग्र माध्यम बनाती है, जो वैदिक काल से शुरू होकर आज भी भारतीय समाज का अभिन्न अंग है।

संदर्भ (References)

1. ऋग्वेद 7/8/9/10/18/8
2. अमरकोश (3/5/19)
3. अंगुत्तर निकाय (1/117)

4. दीघ निकाय (2/142)
5. दिव्यदान (239/17, 241/5)
6. दिव्यदान, 29/9-10 "ताभिर्भगवतः केश, नख स्तूप प्रतिष्ठापि"
7. अथर्ववेद 5/3/14 भूमिगृह
8. आश्वलायन गृहसूत्र 4/5 (अस्थिकुम्भ-अवशेष पात्र)
9. जातक (3/156, 3/99/116)
10. मज्झिमनिकाय (2/244)
11. वैदिक इंडेक्स भाग (1, पृ.सं. 8)
12. श्रीवास्तव, ए.एल., (1988), भारतीय कला, किताब महल पब्लिशर्स, इलाहाबाद, पृ. 42, 43, 44
13. उपाध्याय, वासुदेव (2003), प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मंदिर, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ. 4
14. प्रसाद, पूनम (2016), प्राचीन शिल्प एवं स्थापत्य, बी.आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, दिल्ली, पृ. 103
15. सिंह, प्रियसेन (2016), भारत के प्रमुख बौद्ध तीर्थ स्थल, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 15
16. बापट, पी.वी. (2010), "बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष", प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ.
17. https://navbharatimes.indiatimes.com (NBT)

****